# पाठ्यक्रम का एकात्मक दर्शन

❑ पी. एच. फीनिक्स

अनुवाद : संतोष शर्मा

वर्तमान में शिक्षा के प्राथमिक से लेकर उच्च, विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम निर्धारण को लेकर चिंता, मतभेद और संशय व्यक्त हो रहे हैं । ज्ञान के बढ़ते क्षितिज, सूचनाओं की भरमार और तेजी से बदलती परिघटनाओं ने 'किसी सुसंगत, सुस्थिर और सार्थक' पाठ्यक्रम को प्रश्नित कर दिया है । इस संदर्भ में फीनिक्स का यह प्रसिद्ध लेख पाठ्यक्रम को लेकर गंभीर चिंतन और संवाद का आधार प्रदान कर सकता है ।
फीनिक्स के मतानुसार व्यक्ति को जीवन पर एक समग्र दृष्टिकोण अपनाने के लिए पाठ्यक्रम के एक एकात्मक दर्शन की आवश्यकता है । मूलत: मनुष्य ऐसे प्राणी हैं जो अर्थों को अनुभव करने की क्षमता रखते हैं। आवश्यक अर्थों को उत्पन्न करने की प्रक्रिया को सामान्य शिक्षा कहते हैं । फिनिक्स अर्थों के छ: संभावित पहलुओं का विश्लेषण कर यह स्पष्ट करते हैं कि इस विश्लेषण का पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने में क्या महत्व है ।

पूर्णता को अनुभव करना आसान नहीं है । सभ्य जीवन के इस नाटक में बहुत से लोग अपनी पूरी भूमिका के बारे में कम ही सोचते हुए अपने सीमित योगदान को निभाते हैं । हो सकता है अपने इस योगदान के बारे में उसे एक अस्पष्ट सा भान हो, पर वह सभ्यता के तमाम ढांचे से अपने संबंध के बारे में कोई सतत् अध्ययन एवं मनन करें, यह आवश्यक नहीं है ।

दृष्टिकोण की यह सीमाबद्धता शिक्षा में भी प्रत्यक्ष है । साधारणत: यही देखा जाता है कि अध्यापक किसी खास विषय को या विषय के अन्तर्गत किसी इकाई को पाठ्यक्रम के दूसरे घटकों से संबंध के संदर्भ दिए बिना ही पढ़ाता है । इसी प्रकार विद्यार्थी भी बिना इस जानकारी के अध्ययन करते हैं कि उनके ज्ञान एवं कौशल का बढ़ता भण्डार एक समग्र जीवन में क्या योगदान कर सकता है। बिना उस विस्तृत ढांचे की जांच के जिसमें संघटक हिस्से अवस्थित रहते हैं, विद्यार्थी एवं अध्यापक एक समान पाठ्यक्रम को भिन्न अवयवों के परंपरागत अनुक्रम के रूप में ग्रहण करने को तत्पर रहते हैं ।

चूंकि शिक्षा एक पीढी तक संस्कृति के निरन्तर प्रवाह का साधन है, संस्कृति के समान शिक्षा में भी दृष्टिकोण की यह एक पक्षीय धारणा पाई जाती है । फिर भी ऐसा ही हो यह आवश्यक नहीं है । वास्तव में शिक्षा का विशिष्ट कार्य जीवन के प्रति व्यक्ति के रवैये को उदार बनाना, संबंधों में अंतर्दृष्टि को गहरा करना, परम्परागत अस्तित्व के क्षेत्रियवाद का प्रतिकार करना; संक्षेप में, एक समग्र दृष्टिकोण पैदा करना है । यदि इस समेकित परिप्रेक्ष्य को प्राप्त करना है तो पाठ्यक्रम का एक दर्शन आवश्यक है । इस प्रकार के दर्शन से तात्पर्य है, आलोचनात्मक रूप से परीक्षित विचारों की एक सुसंगत व्यवस्था जिसके द्वारा शिक्षण के विषयवस्तु की सभी संघटक इकाइयों की पहचान एवं व्यवस्था की जाती है।

पाठ्यक्रम का एकात्मक दर्शन बहुत से कारणों से महत्वपूर्ण है जिनमें से निम्न चार को उद्धृत किया जा सकता है ।

प्रथम, पाठ्यक्रम में क्या शामिल किया जाये व किसे छोड़ा जाये, इस बारे में सभी विवेकपूर्ण निर्णयों के लिए समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है । यदि किसी विषय का दूसरे की बजाय चयन किया जाता है तो यह जानना महत्वपूर्ण है कि वह विषय किसी अन्य विषय से किस प्रकार भिन्न है और सीखने वाले के अनुभव व स्वभाव की संपूर्ण रचना में एक संघटक के रूप में किसी एक को दूसरे के बजाय प्राथमिकता क्यों दी जाये ।

दूसरा, पाठ्यक्रम का एक अनुकूल स्वरूप होना चाहिये क्योंकि व्यक्ति पृथक-पृथक अवयवों का एक संयोजन न होकर आवश्यक रूप से एक संगठित समग्रता है । अध्ययन का नियोजन व्यक्ति के विकास में सर्वोत्तम योगदान कर सकता है । यदि यह मनुष्य की संपूर्णता के लक्ष्य द्वारा शासित है क्योंकि यह एक वही व्यक्ति होता है जो अपने अध्ययन की अवधि के दौरान उत्तरोत्तर अनुभूतियों में से प्रत्येक का अनुभव करता है ।

तीसरा, समाज एवं व्यक्ति दोनों ही सामूहिकता के सिद्धांतों पर निर्भर करते हैं; प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के समान ही सामूहिक

जीवन को भी समग्र नियोजन की आवश्कयता होती है । शिक्षण के लिए समग्र संरचना के रूप में नियोजित पाठ्यक्रम सामूहिकता के विकास का आधार प्रदान करता है जबकि एक विभाजित पाठ्यक्रम समाज के जीवन में विखण्डन पैदा करता है ।

चौथा, ज्ञान की संरचना का एक समग्र दृष्टिकोण पाठ्यक्रम के घटकों के प्रत्येक भाग की सार्थकता को बढ़ावा देता है । किसी विषय की दूसरे विषय के साथ संबंध की समझ से ही उस विषय वस्तु का महत्व बढ़ता है, और दूसरे विषयों से इसकी समानताओं व विरोधाभासों के आलोक में ही इसके विशिष्ट लक्षणों की उत्कृष्ट समझ बनती है ।

इस लेख का उद्देश्य पाठ्यक्रम के दृष्टिकोण की एक रूपरेखा यह दिखाते हुए प्रस्तुत करना है कि किस प्रकार शिक्षा का अभीष्ट लक्ष्य, विषयवस्तु एवं अनुक्रम, मानव स्वभाव व ज्ञान के बारे में निश्चित मौलिक समझ से उदभूत किये जा सकते हैं । यह स्पष्ट किया जायेगा कि सामान्य शिक्षा को नियंत्रित करने वाला विचार जो शिक्षा की बनावट को एकता प्रदान करता है, का उद्भव व्यक्ति एवं उसके सीखने के तरीकों के दर्शन से होता है । बहस की मुख्य बात का सार निम्न रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है :

मनुष्य आवश्यक रूप से वे प्राणी हैं जो अर्थों को अनुभव करने की क्षमता रखते हैं । विशिष्ट रूप से मानव अस्तित्व अर्थों की एक संरचना में निहित रहता है । इसके अतिरिक्त सामान्य शिक्षा आवश्यक अर्थों को उत्पन्न करने की प्रक्रिया है ।

दुर्भाग्य से, अर्थों की प्राप्ति का मार्ग कभी भी आसान नहीं रहा है । मानव परिस्थिति ही ऐसी है कि मनुष्य जाति सदैव उन ताकतों से आशंकित रही है जो अर्थों को नष्ट करती है। मूल्य, उद्देश्य एवं विवेक भंगुर उपलब्धियां हैं और बहुत आसानी से व्यर्थता, कुण्ठा एवं शंका की मनोवृत्ति को जन्म देती हैं। इस प्रकार अर्थ, अर्थहीनता के गर्त में खो जाता है ।

अर्थ के सामने जो निरंतर खतरे हैं वे आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की अवस्था के अन्तर्गत और भी तीव्र हो जाते हैं । इसके लिए चार सहायक कारक विशेष उल्लेख के पात्र हैं । पहला है, समीक्षा व संशयवाद की मनोवृत्ति।

सामान्य शिक्षा का लक्ष्य अर्थ को परिवर्धित एवं गहरा करते हुए जीवन को सार्थक करना है । अत: आधुनिक पाठ्यक्रम का निर्माण समकालीन जीवन में अर्थहीनता के इन स्रोत्रों पर विशेष ध्यान के साथ करना चाहिए, अर्थात, पाठ्यक्रम की योजना इस प्रकार तैयार की जानी चाहिए, जिससे नकारात्मक संशयवाद, निर्व्यक्तिकरण एवं विखण्डन, अतिरेक व क्षणभंगुरता का प्रतिरोध किया जा सके ।

**चूंकि शिक्षा एक पीढी तक संस्कृति के निरन्तर प्रवाह का साधन है, संस्कृति के समान शिक्षा में भी दृष्टिकोण की यह एक पक्षीय धारणा पाई जाती है । फिर भी ऐसा ही हो यह आवश्यक नहीं है । वास्तव में शिक्षा का विशिष्ट कार्य जीवन के प्रति व्यक्ति के रवैये को उदार बनाना, संबंधों में अंतर्दृष्टि को गहरा करना, परम्परागत अस्तित्व के क्षेत्रियवाद का प्रतिकार करना; संक्षेप में, एक समग्र दृष्टिकोण पैदा करना है ।**

अर्थ की खोज यदि शिक्षा का आधार है तो, पाठ्यक्रम के दर्शन का मुख्य लक्ष्य अर्थ के स्वभाव का विश्लेषण करना है । अर्थपूर्ण अनुभव बहुत प्रकार के होते हैं । ऐसी कोई एक विशेषता नहीं है जिसे अर्थ के सारांश के रूप में मनोनीत किया जा सके । इसलिए हमें केवल अर्थ की बात न करके अर्थों या अर्थ के क्षेत्रों की बात करनी चाहिए । अत: पाठयक्रम के किसी भी दर्शन में, अर्थ के क्षेत्रों के एक मानचित्रण की आवश्यकता है, जिसमें महत्वपूर्ण अनुभवों का चित्रण हो तथा अर्थ के विभिन्न प्रभाव क्षेत्रों की पहचान की गई हो एवं उनके परस्पर संबंध को स्थापित किया गया हो ।

मनुष्य द्वारा ज्ञान प्राप्ति के विभिन्न संभावित तरीकों के विश्लेषण से अर्थ के छ: मूलभूत प्रतिरूप उभर कर आते हैं । इन छ: प्रतीकों को हम क्रमश: प्रतीक शास्त्र, अनुभव शास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, नीति शास्त्र एवं सहदर्शन कह सकते हैं ।

अर्थ के इन प्रत्येक क्षेत्रों एवं उसके संघटक उपक्षेत्रों को उसकी खास पद्धतियों, मुख्य धारणाओं एवं विशिष्ट संरचनाओं के संदर्भ में वर्णित कर सकते हैं । प्रत्येक क्षेत्र एवं उपक्षेत्र के संदर्भ में, अपने अनोखेपन एवं अर्थ के अन्य रूपों के साथ अपने संबंध व निरंतरता में यह विशेषताऐं खास रूप से देखी जा सकती हैं । इन क्षेत्रों का सामान्य चित्रण निम्नांकित है :

प्रथम क्षेत्र है प्रतीकशास्त्र, जो साधारण भाषा, गणित एवं संकेत अनुष्ठान, लय-ताल जैसे गैर तर्कमूलक प्रतीकों को समाहित करता है । ये अर्थ उन मनमाने (एकतरफा) प्रतीकात्मक ढांचों में समाहित है, जिनके रूप लेने एवं रूपांतरित होने के सामाजिक रूप से स्वीकृत कुछ नियम हैं तथा जिनका निर्माण किसी भी अर्थ को प्रकट एवं सूचित करने के साधन के रूप में हुआ है । ये प्रतीकात्क ढांचे एक प्रकार से अर्थ के सबसे मूलभूत क्षेत्र हैं क्योंकि अन्य क्षेत्रों

में अर्थ को प्रकट करने के लिए इनका प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है ।

दूसरा क्षेत्र है अनुभवशास्त्र, जिसके अन्तर्गत भौतिक दुनिया, मानविक विज्ञान एवं जीवित वस्तुएं आती हैं । यह शास्त्र पदार्थ, जीवन, बुद्धि एवं समाज की दुनियॉ में निरीक्षण एवं परीक्षण पर आधारित तथ्यात्मक वर्णन, सामान्यीकरण और सैद्धांतिक सूत्रों को पेश करता है । ये शास्त्र अर्थों को प्रमाण एवं सत्यापन के कुछ निश्चित नियमों और विश्लेषणात्मक अमूर्तता के ठोस सिद्धांतों के अनुसार तैयार किये गये संभावित अनुभाविक सत्यों के रूप में प्रकट करते हैं ।

तीसरा क्षेत्र है सौंदर्यशास्त्र, जिसके अन्तर्गत विभिन्न कलाऐं, जैसे, संगीत, दृश्य कलाऐं, रूपंकर कलाऐं और साहित्य हैं । इस क्षेत्र में अर्थ प्रत्येक विशिष्ट वस्तुओं को, कल्पित व्यक्ति निष्ठताओं के अनुपम विषयीकरण के रूप में, मनन द्वारा प्रत्यक्ष करता है ।

चौथा क्षेत्र है सायनोटिक्स (सह दर्शन), जो मिशेल पोलिन्यी के व्यक्तिगत ज्ञान और मार्टिन बबर के 'अहं-त्वम' संबंध को अंगीकार करता है। सायनोटिक्स एक नवीन शब्द है जिसका आविष्कार इसलिए किया गया था क्योंकि इच्छित धारणा को प्रकट करने के लिए कोई भी परिकल्पना पर्याप्त नहीं लगी एवं इसकी व्युत्पत्ति यूनानी शब्द सायनोटिक्स से हुई है । अर्थात 'ध्यानात्मक विचार' और यह शब्द स्यान माने 'साथ में' और नोइसिस माने 'प्रज्ञान' का संयोग है । इस प्रकार सायनोटिक्स संबंधात्मक अंतर्दृष्टि या प्रत्यक्ष बोध को सूचित करता है । यह ज्ञान के क्षेत्र में उसी प्रकार है जैसे भावनाओं के क्षेत्र में सहानुभूति है । यह व्यक्तिगत या संबंधात्मक ज्ञान ठोस, प्रत्यक्ष व अनिवार्य है । यह दूसरों के लिए, स्वयं के लिए या वस्तुओं के लिए भी एक जैसा लागू हो सकता है।

पांचवा क्षेत्र है नीतिशास्त्र, जिसमें नैतिक अर्थ प्रत्यक्ष रूप या संबंधों के बोध को नहीं बल्कि बाध्यता को दर्शाता है । निराकार ज्ञानात्मक समझ से संबंधित शास्त्रों के विपरीत, आदर्श सौंदर्यात्मक विचारों को प्रकट करने वाली कलाओं के विपरीत और व्यक्तियों के परस्पर बोध को प्रतिबिम्बित करने वाले व्यक्तिगत ज्ञान के विपरीत, नैतिकता का संबंध व्यक्ति के आचरण से है जिसका आधार स्वतंत्र, जिम्मेदार और सुविचारित निर्णय है ।

छठा क्षेत्र सयनोपटिक्स (सहदर्शीशास्त्र) उन अर्थों का संदर्भ देता है जो समग्र रूप से समाकलनात्मक हैं । इसके अन्तर्गत इतिहास, धर्म और दर्शन आते हैं । यह विषय अनुभवात्मक, सौंदर्यात्मक एवं सहदर्शी अर्थों को एक सुगत संपूर्ण में संघटित करते हैं । ऐतिहासिक परिभाषा, कुछ तथ्यात्मक साक्ष्यों के अनुसार भूतकाल की एक कलापूर्ण पुन: सृष्टि है जो यह दर्शाती है कि मनुष्य ने प्रदत्त परिस्थितियों में, सुविचारित निर्णयों द्वारा अपने आपको किस रूप में ढाला है । धर्म का तात्पर्य, संपूर्ण, समग्र और अनुभवातीत जैसी परम अवधारणाओं के दृष्टिकोण से अभिकल्पित उन अंतिम अर्थों से है भले ही वे कोई भी क्षेत्र के हों । दर्शन सभी प्रकार के अर्थों को अपनी विशिष्टताओं एवं अंतरसंबधों में एक विचारशील व्याख्या द्वारा तमाम अन्य क्षेत्रों का विश्लेषणात्मक स्पष्टीकरण, मूल्यांकन और संश्लेषित समन्वय उपलब्ध कराता है।

प्रतीकशास्त्र, जिन्हें अर्थों के वर्णाक्रम के एक किनारे पर रखा गया है, अर्थों की संपूर्ण सूची को शामिल करते हैं क्योंकि वे जो भी हैं उनकी अभिव्यक्ति का प्रतीक शास्त्र एक आवश्यक साधन है। उसी प्रकार सहदर्शी शास्त्र जिन्हें अर्थों के वर्णाक्रम के एक दूसरे किनारे पर रखा गया है, भी अपने समाकलनात्मक स्वभाव के कारण अर्थों की सम्पूर्ण सूची को अपने में समेटते हैं । प्रतीकशास्त्र एवं सहदर्शी शास्त्र के इन दो क्षेत्रों के बीच में अर्थ के चार आवश्यक रूप से पृथक (यद्यपि परस्पर निर्भर) आयामों या संसार व अस्तित्व से मानव सम्बद्धता के महत्वपूर्ण तरीकों के रूप में अनुभवशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, सायनोटिक्स एवं नीतिशास्त्र अवस्थित रहते हैं ।

इस प्रकार, उपरोक्त छ: क्षेत्र मानव द्वारा अनुभव किये जाने वाले समस्त अर्थों के लिए आधार बनते हैं । ये इस भाव में आधार है कि ये अर्थ के वे पूर्ण एवं आदर्श रूप हैं जो मानव दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रत्येक अनुभव की गुणवत्ता को निर्धारित करते हैं । इस दृष्टिकोण के अनुसार, प्रत्येक अर्थ को किसी मौलिक अर्थ का या दो या अधिक अर्थों के सम्मिश्रण की अभिव्यक्ति के रूप में विश्लेषण किया जा सकता है । व्यवहार में, अर्थ यदाकदा ही अमिश्रित एवं सहज रूप से उद्घाटित होते हैं । ये लगभग हमेशा विभिन्न तात्विक किस्मों में संयोजित रहते हैं ।

व्यवहार में इस जटिलता के बावजूद भी, पाठयक्रम विश्लेषण एवं संरचना के उद्देश्य से, समस्त अर्थों में मौलिक संघटकों का भेद करना एवं इन तत्वों के आलोक में सामान्य शिक्षा के लिए सीखने की प्रक्रिया को व्यवस्थित करना उपयोगी है ।

यदि छ: क्षेत्र संभावित अर्थों की सूची को आच्छादित करते हैं तो यह माना जा सकता है कि वे उन सब मौलिक क्षमताओं को समाविष्ट करते हैं जो सामान्य शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति में विकसित करनी चाहिए । एक परिपूर्ण व्यक्ति को संवाद प्रतीक एवं संकेत के प्रयोग में दक्ष, तथ्यात्मक रूप से बहुविद, सौंदर्यात्मक वस्तुओं के निर्माण एवं प्रशंसा करने में सक्षम, स्वयं के एवं दूसरे के साथ संबंध में एक समृद्ध व अनुशासित जीवन से सम्पन्न, विवेकपूर्ण निर्णय करने तथा उचित अनुचित में अंतर करने में समर्थ और एक समग्र

दृष्टिकोण का मालिक होना चाहिए। परिपूर्ण मनुष्यों के विकास के लिए सामान्य शिक्षा के यही लक्ष्य हैं ।

उपरोक्त मौलिक क्षमताओं का विकास करने वाले पाठ्यक्रम का निर्माण मनुष्य की, अर्थ के लिए मूलभूत इच्छा को संतुष्ट करने के लिए किया जाता है । भाषा, गणित, विज्ञान, कला, व्यक्तिगत संबंध, नीतिशास्त्र, इतिहास, धर्म एवं दर्शन में विद्यमान शिक्षाएं, नकारात्मक संकटपूर्ण मनोदशा एवं आधुनिक अर्थहीनता की व्यापक मनोवृत्ति का एक शैक्षणिक समाधान है । इसके अतिरिक्त ये सब तत्व एक परिपूर्ण व्यक्ति के निर्माण में आवश्यक संघटक हैं ।

चूंकि अर्थ के क्षेत्रों पर आधारित पाठयक्रम, एक सुस्पष्ट संपूर्ण की रचना करता है इसलिए यह अनुभव के विखण्डन का प्रतिरोध करता है जो अर्थहीनता के स्रोतों में से एक है । भिन्न प्रकार के अर्थ केवल अलग क्षेत्रों में नहीं रहते हैं वे परस्पर संबंधित और पूरक होते हैं । और अर्थ की एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था के हिस्से का निर्माण करते हैं । खासतौर पर प्रतीकशास्त्र एवं सहदर्शन विभिन्न क्षेत्रों को एक ही डोर में पिरोने की भूमिका अदा करते हैं तथा एक अर्थपूर्ण रचना में संयोजित करते हैं ।

पाठ्यक्रम की योजना तैयार करते वक्त पाठ्यविषयों की व्याप्ति के बारे में निर्णय के अलावा, विषय वस्तु के क्रम के बारे में भी निर्णय लेना आवश्यक है। पाठ्यविषयों के अनुक्रम के सिलसिले में तीन घटक मुख्य रूप से सामने आते हैं। पहला घटक है, अखंडता, जिसकी चर्चा पूर्व में भी की गई है, जो संकेत करता है कि विद्यार्थी को अपने पाठ्यजीवन के प्रत्येक चरण में अर्थ के सभी छ: क्षेत्रों में से कुछ न कुछ शिक्षा (ज्ञान) प्राप्त होनी चाहिए। इस प्रकार अर्थ की संपूर्णता की ओर एक निरन्तर प्रगति सुनिश्चित की जा सकती है ।

इस क्रम में दूसरा घटक है विभिन्न प्रकार के अर्थों की तार्किक क्रमबद्धता । जैसे स्पष्ट है कि भाषाओं को, जो सभी क्षेत्रों में अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य है, शुरू में विशेष महत्व देना है। दूसरी ओर, सहदर्शन क्षेत्र जिनका अध्ययन कई अन्य अर्थों में प्रचुर मात्रा में समाकलित होने पर निर्भर है, विद्यार्थी अपने पाठ्य जीवन के उत्तरकाल में सही रूप से कर सकते हैं । विवरणात्मक शास्त्रों के अध्ययन के लिए पूर्व तैयारियों की कम आवश्यकता होती है जबकि नैतिक विषयों का महत्व तभी होता है जब विद्यार्थी वास्तव में कोई उत्तरदायित्व ग्रहण करता है । सौंदर्यशास्त्र और सायनोटिक्स क्षेत्रों के उत्तम अध्ययन के लिए जीवन का एक मध्यम स्तर का अनुभव आवश्यक है । इस प्रकार, अर्थ के क्षेत्रों के परस्पर संबंधों का पाठ्य विषयों की उत्तम क्रमबद्धता पर काफी प्रभाव है।

**उपरोक्त मौलिक क्षमताओं का विकास करने वाले पाठ्यक्रम का निर्माण मनुष्य की, अर्थ के लिए मूलभूत इच्छा को संतुष्ट करने के लिए किया जाता है । भाषा, गणित, विज्ञान, कला, व्यक्तिगत संबंध, नीतिशास्त्र, इतिहास, धर्म एवं दर्शन में विद्यमान शिक्षाएं, नकारात्मक संकटपूर्ण मनोदशा एवं आधुनिक अर्थहीनता की व्यापक मनोवृत्ति का एक शैक्षणिक समाधान है । इसके अतिरिक्त ये सब तत्व एक परिपूर्ण व्यक्ति के निर्माण में आवश्यक संघटक हैं ।**

**चूंकि अर्थ के क्षेत्रों पर आधारित पाठयक्रम, एक सुस्पष्ट संपूर्ण की रचना करता है इसलिए यह अनुभव के विखण्डन का प्रतिरोध करता है जो अर्थहीनता के स्रोतों में से एक है। भिन्न प्रकार के अर्थ केवल अलग क्षेत्रों में नहीं रहते हैं वे परस्पर संबंधित और पूरक होते हैं। और अर्थ की एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था के हिस्से का निर्माण करते हैं ।**

मानव विकास एवं परिपक्वता, पाठ्यविषयों के अनुक्रम में तीसरा घटक है । आनुभविक अध्ययन यह दिखाता है कि बढ़ता हुआ व्यक्ति अपने विकास की अलग अलग अवस्था में भिन्न भिन्न तरीके की शिक्षा के लिए तैयार होता है। अनुक्रम की योजना बनाते वक्त ग्राह्यता के इन स्तरों को ध्यान में रखना चाहिए ।

विषयों के विस्तार एवं अनुक्रम के बाद, पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए, विषयवस्तुओं के चुनाव और व्यवस्थापन के कुछ सिद्धांतों की आवश्यकता है । अध्ययन की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, और इस विशाल सांस्कृतिक भण्डार से पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के लिए एक अति सूक्ष्म अंश को चुनने का कार्य शिक्षक का होता है । यह पाया गया है कि आज की दुनियां में निराशा एवं अर्थहीनता की जो भावना व्याप्त है, उसका एक निमित्त ज्ञान की यह प्रचुरता है । ज्ञान के इस अम्बार को समावेशनीय अनुपातों में परिवर्तित करने के लिए यदि किन्हीं समर्थनीय मानदण्डों का आविष्कार कर सकते हैं तो अर्थ की खोज में वह एक बहुत बड़ा योगदान होगा।

यह स्मरणीय है कि अर्थहीनता का एक अन्य स्रोत आधुनिक जीवन में हो रहे परिवर्तन की द्रुतगति है जिसके कारण जो सीखा जाता है वह जल्द ही अप्रयुक्त हो जाता है । फिर भी, यदि पाठ्यविषयों का चयन इस प्रकार हो सकता है जिससे इस सर्वव्यापी

परिवर्तन के बीच थोड़ा भी स्थायित्व ला सकें; तो वह भी अर्थ की अनुपूर्ति में एक महत्वपूर्ण अंशदान होगा ।

अर्थ के सर्वोत्तम विकास के लिए विषय वस्तुओं के चयन एवं व्यवस्थापन के चार मूल सिद्धांतों का प्रस्ताव किया जाता है। पहला सिद्धांत यह है कि पाठ्यविषय संपूर्णरूप से अनुशासित जांच पड़ताल के क्षेत्रों से लिया जाना चाहिए । संस्कृति की समृद्धि और बुद्धि का स्तर जो विकसित सभ्यताओं में पाया जाता है, वह लगभग पूर्णरूप से ही प्रतिभाशाली व्यक्तियों एवं विशेषज्ञों के सुव्यवस्थित समूहों के परिश्रम का फल है । समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए उच्च कोटि की सभ्यता असाधारण प्रतिभाओं वाले व्यक्तियों की समर्पित सेवा का नतीजा है । प्रत्येक व्यक्ति जो भी कुछ है व हो पाया है उसके लिए वह उन कुशल आविष्कारकों, प्रयोगकर्ताओं, कलाकारों, मनीषियों, पण्डितों, पैगम्बरों और संतों की विशाल शृंखला का ऋणी है जिन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभाओं को समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया । कोई भी व्यक्ति चाहे कितना भी सक्षम क्यों न हो, बिना विशषज्ञों पर निर्भरता के जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रभावी उन्नति नहीं कर सकता।

इसका तात्पर्य है कि अध्यापक को शिक्षण सामग्री के सबसे विश्वसनीय एवं लाभप्रद संसाधन के रूप में (विशिष्ट विषयों की मदद) लेनी चाहिये, कि ज्ञान को उन्होने उत्पन्न किया है और उन्हें यह भी आशा नहीं करनी चाहिए कि शिक्षा के फल विद्यार्थियों के साझा अनुभवों से या सामान्य बोध से उदभूत कोई चमत्कार की तरह प्रत्यक्ष होंगे ।

पाठ्य विषय शब्द का तात्पर्य ज्ञान के स्थापित क्षेत्रों के अपरिवर्तनशील समूह के संदर्भ से नहीं है । नये विषय जैसे साइबरनैटिक्स, परा मनोविज्ञान, खेलों का सिद्धांत, अंतरिक्ष यानिकी एवं धर्मविज्ञान आदि लगातार अस्तित्व में आ रहें हैं । नये सम्मिश्रण जैसे जैव रसायनशास्त्र एवं विज्ञान का इतिहास, स्थान ग्रहण कर रहे हैं । इसी प्रकार, बहुत से स्थापित पाठ्यविषय भी मूलभूत आंतरिक रूपांतरण से गुजर रहे हैं । आधुनिक भौतिकशास्त्र, संगीत, इतिहास एवं धर्मविज्ञान उनमें से कुछ हैं । वास्तव में, मुश्किल से ही शिक्षा का कोई ऐसा क्षेत्र है जिसका वर्तमान रूप महत्वपूर्ण संबंधों में इसके कुछ दशकों पूर्व के रूप से भिन्न नहीं है । अत: पाठ्यविषयों से ली गई सामग्री के प्रयोग करने का वर्तमान प्रस्ताव शिक्षा के परम्परागत पाठ्यक्रम की ओर पुनर्गमन के लिए एक तर्क नहीं है । यह सिर्फ उस पाठ्यसामग्री के विशिष्ट प्रयोग के लिए तर्क करता है जो अपने क्षेत्र में विशेषज्ञता रखने वाले विद्वानों द्वारा तैयार किया गया है । अनुशासित परीक्षण में विकास के चलते, पाठ्यविषयों से लिए गये ज्ञान के प्रयोग करने का प्रस्ताव एक परम्परागत किस्म के पाठयक्रम के बजाय एक नवीन पाठयक्रम का पक्ष लेता है ।

विषयवस्तु के चयन का दूसरा सिद्धांत है कि किसी भी प्रदत्त पाठय विषय में उपलब्ध वृहद सामग्री से उन इकाइयों का चयन किया जाना चाहिए जो उस क्षेत्र की संपूर्णता का प्रतिनिधित्व करती हैं । सरलीकरण की अत्यांतिक प्रगति ही ज्ञान के आधिक्य का एकमात्र प्रभावकारी समाधान है। समूचे विषय की उन प्राथमिक या मूलभूत धारणाओं को, जो पूरे विषय का सार है, खोज निकालने से इस उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है । यदि विषयवस्तुओं को ध्यानूपर्वक चयनित एवं व्यवस्थित किया जाए जिससे हर विषय के विशेष गुणों पर जोर दिया जा सके तो, ज्ञान के एक वृहद भण्डार की प्रभावकारी समझ के लिए, अपेक्षाकृत एक लघु शिक्षा सामग्री ही पर्याप्त हो सकती हैं । प्रतिनिधि विचारों पर आधारित पाठय सामग्रियों के उपयोग से विद्यार्थी के काम में एक मूलभूत सरलीकरण संभव हो सकता है।

तीसरा, एवं इसी से संबंधित एक सिद्धांत यह है कि विषय वस्तु का चयन इस प्रकार होना चाहिये कि पाठ्यविषय के अन्तर्गत अन्वेषण पद्धतियों एवं समझने के तरीकों का विशेष उल्लेख हो । खोज के परिणामस्वरूप उत्पन्न किसी वस्तु के अध्ययन से ज्यादा महत्वपूर्ण, (विद्यार्थी के लिए) ज्ञान अर्जित करने की रीतियों में निपुण बनना है । पद्धतियों का ज्ञान होने से व्यक्ति का अपने द्वारा ही शिक्षा जारी रखना और निजी स्तर पर कोई खोज प्रारंभ करना संभव हो सकता है । यही नहीं, अन्वेषण के परिणामों की अपेक्षा चिंतन के सिद्धांत कहीं कम परिवर्तनशील होते हैं । पद्धतियों पर ध्यान केन्द्रित करने से, पूर्व उल्लेखित दो प्रकार की अर्थहीनता, अर्थात (शिक्षण) सामग्रियों के विखण्डन एवं आधिक्य का समाधान निकल सकता है ।

प्रत्येक विषय अपनी रीतियों द्वारा एकीकृत होता है जो अध्ययन में उनसे निकले सभी निष्कर्षों का सामान्य स्रोत है ।

विषयवस्तु के चयन का चौथा सिद्धांत है कि चयनित सामग्री ऐसी हो जो कल्पना को जगाती है । अर्थ में परिपक्वता केवल तभी आती है जब विद्यार्थी पाठयसामग्री को तत्परता से ग्रहण कर उसका पुन: निर्माण करता है। अनलंकृत, नीरस एवं परम्परागत रीतियां विचारों के प्रति व्यक्ति को सक्रिय रूप से उत्तेजित नहीं करती । अनोखेपन एवं विस्मय का भाव जगाना अच्छे शिक्षण की विशेषताओं में से एक है जिससे अध्ययन एक निरन्तर अपूर्ण अनुभव बन जाता है । इस सिद्धांत के अनुसार, पाठ्यविषयों का आधार जीवन की

साधारण परिस्थितियों या रोजमर्रा की समस्याओं को सुलझाना नहीं होना चाहिये । अर्थपूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए ऐसी सामग्रियों का प्रयोग करना चाहिये जो अनुभव की गहराइयों को छूते हैं । ऐसी सामग्री सुपरिचित अनुभवों को नये सम्मिश्रणों में दर्शाते हुए और पुराने विश्वासों को बदलती हुई, परिस्थितियों के अनुसार ढाल कर, नवीन दृष्टिकोणों को उजागर करती है । पाठ्यसामग्री का ऐसा भावनापूर्ण प्रयोग विद्यार्थियों को इस प्रकार विचारशील बनाता है कि वे तेजी से परिवर्तित होते ज्ञान और विश्वासों का उद्वेगता के बजाय उत्साह के साथ सामना कर सकें एवं सीखने में विचारों के आंतरीकरण एवं भण्डारण के बोझ के बजाय आनन्द अनुभव कर सकें ।

यही इस तर्क का सारांश है जो आगे आनेवाले पृष्ठों में विस्तारपूर्वक एवं सोदाहरण प्रतिपादित किया जायेगा । यह दर्शन इस धारणा पर केन्द्रित है कि अर्थ, मानवीय अनुभव की कुंजी है। विशिष्ट रूप से सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम का यह दर्शन, अर्थ की धारणा पर केन्द्रित रहता है । अत: सिखाने एवं सीखने की प्रक्रियाएं अर्थ के द्वारा नियंत्रित होती हैं । मनुष्य के महत्वपूर्ण अनुभवों की विविधता का अर्थ छ: मूलभूत क्षेत्रों द्वारा प्रतिपादित होता है और प्रत्येक क्षेत्र का अपने संघटक विषयों में विश्लेषण होता है । ज्ञान के ये क्षेत्र पाठ्य-सामग्रियों का स्रोत बनते हैं । पाठ्यविषयों की क्रमबद्धता एवं सामग्रियों के चयन का आधार अर्थ के क्षेत्र, मानुषिक विकास का मनोविज्ञान और विषयों के कुछ मानदण्डों की तर्कसंगतता होनी चाहिये; जो नकारात्मक संशयवाद, विखण्डन, अतिरेक एवं क्षणभंगुरता जैसे अर्थ के शत्रुओं का प्रभाव कम करती हैं । उपरोक्त सारांश में सुव्यक्त रूप से कुछ भी नहीं कहा गया है । समाज की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों में शिक्षा संबंधी निर्णय निश्चित रूप से एक भूमिका निभाते हैं और निभानी भी चाहिए । फिर, वर्तमान विश्लेषण में इन पहलुओं का कोई विशेष उल्लेख क्यों नहीं है । इसके तीन मुख्य कारण हैं ।

पहला, अर्थ की आधारभूत भावना जिस पर अध्ययन केन्द्रित है, आवश्यक रूप से सामाजिक है । अर्थ संबंधात्मक है और वह सार्वजनिक है । कोई भी एकांत में एक अर्थपूर्ण जीवन नहीं जी सकता। अर्थ का यह समूह बिना किसी अपवाद के सभी क्षेत्रों पर लागू है । अर्थ का हर नमूना विचार करने का एक साझा तरीका है। इसीलिए, अर्थ के मूलभूत प्रतिरूपों के आधार पर निर्मित, सामान्य शिक्षा का एक पाठ्यक्रम वास्तविकताओं और आदर्शों को समाविष्ट करता है ।

दूसरा, कि प्रत्येक सामाजिक घटक की सामान्य शिक्षा की अपेक्षा विशिष्टीकृत शिक्षा में अधिक प्रासंगिकता है । किसी समाज की प्रकृति उसके विशिष्टीकृत पेशों के स्वभाव एवं विस्तार में प्रतिबिम्बित होती है । एक समाज से दूसरे समाज में इन व्यवसायों में अधिक बदलाव पाया जाता है, अर्थ के उन गुणों की अपेक्षा, जो किसी भी समाज में एक व्यक्ति को अपने अस्तित्व को सार्थक करने के लिए आवश्यक हैं । इससे जाहिर होता है कि सामान्य शिक्षा पाठयक्रम के बजाय विशिष्टीकृत शिक्षा पाठयक्रम में समाज की विशेष अपेक्षाएं अधिक प्रासंगिक है, जिनका उल्लेख इस लेख में नहीं है ।

तीसरा, ऐसा कोई दावा नहीं किया जा रहा है कि इस लेख में अनुशंसित सिद्धांत, सामान्य शिक्षा पाठयक्रम के लिए भी एक संपूर्ण आधार उपलब्ध कराते हैं । इस लेख में पेश किए गए मतों का उद्देश्य एक सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत करना है जिसके अन्तर्गत, विशिष्ट व्यक्तिगत एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से संबंधित बहुत से अन्य घटकों को ध्यान में रखते हुए पाठयक्रम के बारे में विशेष निर्णय लिया जा सकता है । जिस समाज में शिक्षा प्रदान की जाती है उसकी विशेष आवश्यकताएं एवं संसाधन उन अतिरिक्त घटकों में से हैं जो शिक्षण संस्थानों के पाठयक्रम में प्रासंगिक हैं ।

अत: सामान्य शिक्षा पाठयक्रम के इस दर्शन का उद्देश्य, शिक्षा के माध्यम से मनुष्य के अस्तित्व को अर्थपूर्ण बनाने के लिए, सम्पूर्ण नहीं बल्कि एक विस्तृत मार्गदर्शिका प्रस्तुत करना है। संभवत: इसे जेम्स हार्वी रोबिंसन का 'ज्ञान के मानवीकरण' में एक योगदान मान सकते हैं । पेशेवर विद्वानों की खोज के फल ज्यादातर एक आम व्यक्ति की समझ के बाहर होते हैं, चाहे वह बुद्धिमान और विधिवत् रूप से शिक्षित हों और यह ज्ञान, इसके लिए समर्पित कुछ विशेषज्ञों के अलावा, किसी भी महत्वपूर्ण चिंताओं में प्रासंगिक नहीं होता । सभ्यता की उत्कृष्ट निधियों को आम व्यक्ति के लिए उपलब्ध कराने और इसके मानवीय महत्व को स्पष्ट करने की अति आवश्यकता है । 'आम संस्कृति' को साधारण एवं अर्थहीन होना जरूरी नहीं है ।

जब एक ओर ज्ञान दुरूह और अगम्य होता है, या दूसरी ओर सतही एवं सर्वसुलभ होता है, दोनों ही अवस्थाओं में अर्थ अपना महत्व खो देता है । पाठयक्रम का यह दर्शन, इस सिद्धांत के लिए समर्पित है कि सभ्यता की उन अनमोल निधियों को इस प्रकार प्रतिपादित किया जाये ताकि वह उन लोगों के लिए, जो अपनी अंतर्निहित मानवीयता को चरितार्थ करना चाहते हैं, एक सार्वजनिक विरासत बन जायें ।◆